साहित्य अकादेमी
महत्तर सदस्यता

SAHITYA AKADEMI
FELLOWSHIP

सत्यव्रत शास्त्री
SATYA VRAT SHASTRI

SATYA VRAT SHASTRI

वर्तमान युग के लब्धप्रतिष्ठ संस्कृत कवि तथा समीक्षक महामहोपाध्याय प्रोफ़ेसर सत्यव्रत शास्त्री को अपने सर्वोच्च सम्मान महत्तर सदस्यता से विभूषित करते हुए साहित्य अकादेमी अपूर्व गौरव का अनुभव कर रही है। पाणिनीय शास्त्र में निष्णात होते हुए भी प्रो. शास्त्री ने अतीव प्रतिभाशाली कवि के रूप में प्रतिष्ठित होकर इस अविचारित धारणा को निरस्त कर दिया है कि व्याकरण और काव्य परस्पर विरोधी विधाएँ हैं। प्राचीन काव्य शास्त्र के प्रति श्रद्धावान् होते हुए भी रूढ़िबद्ध काव्य के प्रति प्रो. शास्त्री की श्रद्धा नहीं है। उनकी दृष्टि में सामान्य भणिति से भिन्न उक्ति विशेष ही काव्य है, जो अर्थगाम्भीर्य तथा सालंकार प्रांजल पदावली से अनुप्राणित होकर सहृदय को आनन्द से आप्लावित करता है।

प्रो. सत्यव्रत शास्त्री का जन्म 29 सितम्बर 1930 को लाहौर में हुआ था, जो अब पाकिस्तान का अंग है। संस्कृत वैदुष्य की महती थाती उन्हें उत्तराधिकार में प्राप्त हुई है। शास्त्रिवर ने 'भर्तृहरि के वाक्यपदीय के सन्दर्भ में दिक्काल की अवधारणा' सरीखे दुरूह शास्त्रीय विषय पर डॉ.सूर्यकान्त के निर्देशन में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से 1955 में पी-एच.डी. की महनीय उपाधि प्राप्त की। वाराणसी प्रवास की अवधि में डॉ. शास्त्री को उस समय के पं. शुकदेव झा, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज तथा पं. ढुण्ढिराज शास्त्री जैसे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पण्डितों के सान्निध्य का सौभाग्य मिला। उन धुरन्धर पण्डितों के चरणों में बैठकर उन्होंने महाभाष्य, नव्यन्याय तथा वेदान्त के क्षीरोदधि का अवगाहन किया। सुखद संयोग है कि डॉ. शास्त्री की औपचारिक शिक्षा की परिणति संस्कृत विद्या की प्राचीन प्रतिष्ठित स्थली वाराणसी में हुई।

डॉ. शास्त्री 1959 में शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र दिल्ली विश्वविद्यालय में आ गए। तीस वर्ष से अधिक तक डॉ. शास्त्री ने दिल्ली विश्वविद्यालय की नाना रूपों में सेवा की। सहायक आचार्य के रूप में जो यात्रा आरंभ हुई थी, उसकी परिणति विभागाध्यक्ष तथा आचार्य (प्रोफेसर) एवम् अध्यक्ष कला संकाय के रूप में हुई। यह तीन दशक की अवधि प्रो. शास्त्री के सर्वाधिक अभ्युत्थान का युग था। उनकी काव्य प्रतिभा तथा बौद्धिक, साहित्यिक एवं प्रशासनिक क्षमताएँ उत्तरोत्तर चरम विकास को प्राप्त हुईं। प्रो. शास्त्री के साहित्यिक एवं प्रशासनिक कौशल से लाभान्वित होने के

Sahitya Akademi feels proud in conferring its highest honour – the Fellowship – on Mahamahopadhyaya Professor Satya Vrat Shastri, the eminent Sanskrit poet and critic. Though trained as a grammarian steeped in the Pāṇinian system, Prof. Shastri flowered into a highly talented poet, belying thereby the notion that the grammarians do not make good poets. Poetry, to him, is a charming expression distinct from the beaten track (*vakrokti* as Bhāmaha puts it), enlivened by profundity of meaning and lucidly vigorous phraseology bolstered by a judicious application of *alaṅkāras*, that combine to impart aesthetic pleasure to the connoisseur.

Dr. Shastri was heir to an enviable greatness. For his doctorate he worked on the highly complicated subject 'Time and Space with special reference to Bhartṛhari's *Vākyapadīya*' under the eminent scholar Dr. Suryakant, and secured on it the Ph.D. degree from Banaras Hindu University in 1955. While at Varanasi, he came in contact with some of the most learned pundits of the day. It was they – Pt. Shuk Deo Jha, MM Gopinath Kaviraj and Pt. Dhundhiraj Shastri – who initiated him into the mysteries of the Mahābhāṣya, Navya Nyāya and Vedānta. The ancient seat of Sanskrit learning Varanasi thus marked the acme of his formal education.

The year 1959 brought him to the premier centre of learning, the University of Delhi that was to form his *karmakshetra* thereafter. He served it for over three decades in various capacities, including Professor and Head, Dept. of Sanskrit, and Dean, Faculty of Arts. In befitting recognition of his academic and administrative competence, Prof. Shastri was elevated in 1983 as Vice-Chancellor of Shri Jagannath Sanskrit University, Puri, Orissa. He did a tremendous job in putting the infant university on a firm footing. By this time his fame as a poet had crossed the bounds of the country. He was invited as Visiting and Guest Professor by a number of universities in Germany,

लिए 1983 में उन्हें श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी का कुलपति नियुक्त किया गया। नवस्थापित विश्वविद्यालय को अल्पकाल में सुदृढ़ आधार प्रदान करना उनकी महती उपलब्धि थी। शास्त्री महोदय के पाण्डित्य की कीर्ति तब तक चतुर्दिक् फैल चुकी थी। अत: जर्मनी, कनाडा, बैल्जियम, थाईलैंड आदि देशों ने अपने-अपने विश्वविद्यालयों में संस्कृत अध्ययन को अधिक प्राणवान् एवं व्यवस्थित बनाने के लिए डॉ. शास्त्री को अभ्यागत आचार्य के रूप में निमंत्रित किया। उनके वैदुष्य से उन विभागों में नवजीवन का संचार हुआ। थाईलैंड के राज परिवार में संस्कृत विद्या के प्रवेश का समूचा श्रेय प्रो. शास्त्री के पाण्डित्य और अध्यवसाय को है।

शास्त्रिवर के प्रथम खण्डकाव्य *बृहत्तरं भारतम्* का प्रकाशन 1959 में हुआ, जिसमें नामानुरूप बृहत्तर भारत के नाम से ख्यात दक्षिण पूर्व एशिया के सांस्कृतिक एवम् ऐतिहासिक गौरव का ललित संस्कृत पद्य में मनोरम गान है। शास्त्रिवर्य के नवीन प्रतिपाद्य के प्रति भावी अनुराग का यह पूर्वाभास था।

प्रो. सत्यव्रत शास्त्री बृहत्काय सर्जनात्मक साहित्य के यशस्वी प्रणेता हैं, जिसमें तीन महाकाव्य, चार खण्डकाव्य, पद्यबद्ध पत्रों के दो खण्ड, एक गद्यकाव्य तथा अनेक लघुकाव्य समाविष्ट हैं, जिनमें से प्रत्येक अपनी-अपनी दृष्टि से रुचिकर तथा महत्त्वपूर्ण है। अपने प्रथम महाकाव्य *बोधिसत्त्वचरिम्* (1959) में तो, जिसने बोधिसत्त्व के अवदानों को सरस काव्य का परिधान प्रदान कर संस्कृत काव्य के लिए नए द्वार खोले हैं, डॉ. शास्त्री ने महाकाव्य के आधारभूत तत्त्व वस्तु, नेता और रस से संबंधित काव्यशास्त्रीय मान्यताओं को आमूलचूल नकार दिया है, यद्यपि नव्य विधि से रचित यह काव्य साहित्य रसिकों के कंठ का हार है।

श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम् (1990) में प्रो. शास्त्री की काव्य प्रतिभा अत्युच्च बिन्दु का स्पर्श करती है। रामकथा के एक विदेशी (थाई) रूपान्तर को काव्य का आधार बनाने में विराट् राम साहित्य में नवीन भंगिमा का आधान हुआ है। थाई रूपान्तर की अतिशय भिन्नता के निरूपण से काव्य में जो तरंगायमान ओज स्पन्दित है, वह इसकी विशिष्ट विभूति है। *रामकीर्ति महाकाव्य* का कुछ ऐसा गौरव है कि इसके तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, सात भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है और देश, विदेश में इसे दस पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

सिख इतिहास पर आधारित *श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम्* (1967) संस्कृत के सिख साहित्य में गौरवशाली अध्याय का सूत्रपात करता है। इसके चार सर्गों के अल्प कलेवर में दशम गुरु की उदात्त जीवन गाथा समग्रता से मुखरित है। मनोरम वैविध्य तथा काव्य सौन्दर्य से दीप्त *थाईदेशविलासम्* (1979) प्राचीन श्यामदेश (थाइलैंड) के सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक गौरव का कवित्वपूर्ण उपाख्यान है जिसमें पर्यटक-निर्देशिका की भंगिमा भी है। *नपुंसकलिंगस्य मोक्षप्राप्ति:* में मनोरंजक एकांकी के व्याज से संस्कृत व्याकरण की एक जटिल समस्या का समाधान प्रस्तुत है। कोऽहम् तथाकथित आधुनिक मानव के खंडित एवं कपटपूर्ण व्यक्तित्व के चित्रण द्वारा नवीन

Canada, Belgium, and Thailand to streamline and strengthen the Sanskrit studies there. His assignments in the Silpakorn and Chulalongkorn Universities in Thailand have been highly rewarding.

It was in 1959 that he published his first khaṇḍakāvya, *Bṛhāttaraṁ Bhāratam* which, true to its name, captures in delightful verse the glory of Southeast Asia, popularly known as Greater India that served for ages as a cultural outpost of India.

Prof. Shastri has to his credit an array of creative writings that include three comprehensive Mahākāvyas, four Khaṇḍakāvyas, two sizable volumes of versified letters, a *gadyakāvya*/diary, and a host of shorter works, refreshing and interesting in their own way. In *Bodhisattvacaritam* [1959] which opens up new vistas in reducing to mellifluous verses some of the most elevating *avadānas* (meritorious deeds) of the Bodhisattva, a soul struggling for perfect enlightenment, he has virtually thrown the tradition overboard with respect to even the core elements of *vastu, netā* and *rasa*, but the resultant poem still took connoisseurs, across the world, by storm.

With, *Śrīrāmakīrtimahākāvya* (*RKM*), Professor Shastri's poetic potentials reach their acme. The *RKM* (1990) serves to lend a new dimension to the vast mass of Rāma-literature by exploiting, for the first time, an alien – Thai-version of the Rāma-story, which makes daring departures from Vālmīki's epic, its broad concurrence with the general framework notwithstanding. It has been translated, besides English, into seven major regional languages of the country and has bagged ten national and international awards.

The *Śrīgurugovindasiṁhacaritam* [1967] tends to lend winsome variety to the historical writings in Sanskrit. It makes as delightful a biography of the tenth Guru as worthy it is as a poem. Marked by fascinating variety and flourishes, the *Thaideśavilāsam* (*TDV*) [1979] sets forth the history and culture of Thailand, the ancient Śyāmadeśa, which bears strong cultural and religious affinities with India. The light-hearted *Napuṁsakaliṅgasya Mokṣaprāptiḥ* picks up a knotty grammatical problem for happy resolution. Prof. Shastri's contribution to the travelogue literature in Sanskrit is equally commendable. While the *Śarmaṇyadeśaḥ Sutarāṁ Vibhāti* (1976) details in delightful verse the author's visit to the Federal Republic of Germany, *Caran vai Madhu Vindati* (2012) and *Hungary Kitani Door Kitani Pas* (2012) present a fascinating account in Hindi of his cultural journey to Hungary, Spain, Indonesia etc.